eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 04, Issue 12, December 2025

LGBTQ+ विमर्श और भारतीय समाज में स्वीकार्यता (एक समकालीन सामाजिक–सांस्कृतिक अध्ययन)

डॉ0 प्रियंका रानी[1]

[1]सहायक आचार्य, हिन्दी, राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बिंदकी, फतेहपुर उ0प्र0

Received: 26 Dec 2025 Accepted & Reviewed: 28 Dec 2025, Published: 31 December 2025

Abstract

LGBTQ+ समुदाय से संबंधित विमर्श समकालीन भारतीय समाज में तीव्र गति से उभरता हुआ एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक–सांस्कृतिक प्रश्न है। यह शोधपत्र भारतीय परंपरा, औपनिवेशिक कानूनों, आधुनिक संवैधानिक ढाँचे, साहित्य, मीडिया और सामाजिक व्यवहार के संदर्भ में LGBTQ+ समुदाय की स्वीकार्यता का विश्लेषण करता है। अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि भारतीय समाज में स्वीकार्यता की प्रक्रिया द्वंद्वात्मक है, जहाँ एक ओर संवैधानिक और वैधानिक प्रगति दिखाई देती है, वहीं दूसरी ओर सामाजिक स्तर पर पूर्वाग्रह और भेदभाव अब भी विद्यमान हैं।

मुख्य शब्द– LGBTQ+, लैंगिक पहचान, स्वीकार्यता, भारतीय समाज, सामाजिक विमर्श

Introduction

LGBTQ+ शब्द समलैंगिक (Lesbian,Gay), उभयलैंगिक (Bisexual), ट्रांसजेंडर (Transgender) तथा क्वियर/अन्य लैंगिक पहचानों (Queer+) को समाहित करता है। वर्तमान विमर्श में यह प्रश्न केन्द्रीय है कि क्या भारतीय समाज, जो स्वयं को सांस्कृतिक रूप से सहिष्णु मानता है, वास्तव में लैंगिक विविधताओं को स्वीकार करने के लिए तैयार है।

भारतीय परंपरा में लैंगिक विविधता– लैंगिक पहचानों की अवधारणा पूर्णतः अनुपस्थित नहीं थी। ऋग्वेद में यद्यपि आधुनिक अर्थों में समलैंगिकता या ट्रांसजेंडर पहचान का प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं मिलता, फिर भी सृष्टि की बहुलता, गुणों की अदला–बदली और पुरुष–स्त्री द्वैत से परे दार्शनिक चिंतन के संकेत दिखाई देते हैं, जो लैंगिक तरलता की ओर संकेत करते हैं। महाभारत में शिखंडी, बृहन्नला (अर्जुन) और इला जैसे पात्रों के माध्यम से लैंगिक परिवर्तन, तृतीय लिंग और जेंडर फ्लुइडिटी के स्पष्ट उदाहरण मिलते हैं, जहाँ पात्रों की सामाजिक और नैतिक स्वीकार्यता उनके कर्म और धर्म से निर्धारित होती है, न कि केवल जैविक लिंग से। इसी प्रकार पुराणों में अर्धनारीश्वर की संकल्पना, विष्णु का मोहिनी रूप तथा देवताओं के रूपांतरण की कथाएँ यह दर्शाती हैं कि पुरुष और स्त्री तत्वों को कठोर द्वैत के रूप में नहीं, बल्कि परस्पर पूरक और परिवर्तनशील माना गया है। इन ग्रंथों के माध्यम से यह स्थापित होता है कि भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में लैंगिक पहचान एक बहुआयामी और लचीली अवधारणा रही है, जिसे समकालीन LGBTQ+ विमर्श के संदर्भ में पुनः समझा जाना आवश्यक है।

ब्रिटिश शासन और भारतीय दंड संहिता की धारा 377– ब्रिटिश शासन के दौरान वर्ष 1860 में लागू की गई भारतीय दंड संहिता (Indian Penal Code) की धारा 377 औपनिवेशिक सत्ता द्वारा थोपी गई एक ऐसी वैधानिक व्यवस्था थी, जिसने समलैंगिक यौन संबंधों को "अप्राकृतिक अपराध" की श्रेणी में रखकर दंडनीय घोषित कर दिया। यह धारा मूलतः ब्रिटेन के Victorian नैतिक मूल्यों से प्रेरित थी, न कि भारतीय सामाजिक–सांस्कृतिक परंपराओं से।

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 04, Issue 12, December 2025

धारा 377 के अंतर्गत कहा गया कि "प्रकृति के विरुद्ध" यौन संबंध स्थापित करना अपराध है, जिसके लिए आजीवन कारावास या कठोर दंड का प्रावधान था। इस अस्पष्ट और व्यापक परिभाषा ने केवल समलैंगिक संबंधों ही नहीं, बल्कि सभी गैर–प्रजननात्मक यौन आचरणों को अपराध की श्रेणी में डाल दिया।

औपनिवेशिक नैतिकता बनाम भारतीय परंपरा– औपनिवेशिक नैतिकता बनाम भारतीय परंपरा का विमर्श लैंगिकता और सामाजिक मूल्यों की समझ के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। प्राचीन भारतीय परंपरा में लैंगिक विविधता और यौन अभिव्यक्तियों को पूर्णतः वर्जित या अपराध के रूप में नहीं देखा गया था; वेद, महाकाव्य, पुराण, लोकपरंपराएँ और मंदिर शिल्प इस सांस्कृतिक बहुलता के संकेत प्रदान करते हैं। इसके विपरीत, ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन ने विक्टोरियन ईसाई नैतिकता को नैतिक शुचिता और सभ्यता का सार्वभौमिक मानक मानते हुए भारतीय समाज पर आरोपित किया। भारतीय दंड संहिता की धारा 377 जैसे कानूनों के माध्यम से समलैंगिक संबंधों और गैर–प्रजननात्मक यौन आचरणों को अपराध घोषित कर दिया गया, जिससे लैंगिक अल्पसंख्यकों के प्रति सामाजिक कलंक और भय को कानूनी वैधता मिली। इस प्रक्रिया में भारतीय परंपरा की समावेशी और बहुआयामी लैंगिक दृष्टि संकुचित होती चली गई। समकालीन LGBTQ+ विमर्श इसी ऐतिहासिक टकराव की पुनर्व्याख्या है, जिसमें औपनिवेशिक नैतिकता से मुक्त होकर भारतीय परंपरा की सहिष्णु और समावेशी चेतना को पुनः समझने और स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा है।

संवैधानिक एवं कानूनी परिवर्तन– स्वतंत्र भारत में LGBTQ+ अधिकारों की दिशा में न्यायपालिका द्वारा किए गए हस्तक्षेपों ने इस समुदाय की स्थिति में निर्णायक परिवर्तन लाया है। नालसा बनाम भारत संघ (2014) के ऐतिहासिक निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को तृतीय लिंग के रूप में संवैधानिक मान्यता प्रदान की और यह स्पष्ट किया कि लैंगिक पहचान व्यक्ति की आत्म–अनुभूति पर आधारित होती है। इस निर्णय के माध्यम से ट्रांसजेंडर समुदाय को शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य और सामाजिक सुरक्षा के क्षेत्र में समान अवसर तथा संरक्षण देने का दायित्व राज्य पर निर्धारित किया गया।

इसी क्रम में नवतेज सिंह जौहर बनाम भारत संघ (2018) के फैसले ने औपनिवेशिक मानसिकता से प्रेरित भारतीय दंड संहिता की धारा 377 को आंशिक रूप से निरस्त करते हुए सहमति से बने वयस्क समलैंगिक संबंधों को अपराध की श्रेणी से बाहर किया। न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि यौन अभिविन्यास व्यक्ति की पहचान का अभिन्न अंग है और राज्य को उसमें हस्तक्षेप का अधिकार नहीं है। इन निर्णयों के माध्यम से समानता, गरिमा और निजता को LGBTQ+ समुदाय के लिए मौलिक अधिकार के रूप में पुनर्स्थापित किया गया। इस प्रकार संवैधानिक एवं कानूनी परिवर्तन ने LGBTQ+ व्यक्तियों को अपराधी के रूप में देखने की प्रवृत्ति को चुनौती देते हुए उन्हें गरिमापूर्ण और अधिकार–संपन्न नागरिक के रूप में मान्यता प्रदान की, यद्यपि सामाजिक स्तर पर इसकी पूर्ण अभिव्यक्ति अभी शेष है।

उत्तर–औपनिवेशिक विमर्श और धारा 377– स्वतंत्र भारत में लंबे समय तक यह औपनिवेशिक कानून यथावत बना रहा, जिससे यह स्पष्ट होता है कि औपनिवेशिक मानसिकता कानून व्यवस्था में कितनी गहराई तक समाहित थी। अंततः नवतेज सिंह जौहर बनाम भारत संघ (2018) के ऐतिहासिक निर्णय द्वारा इसे आंशिक रूप से निरस्त किया गया और समलैंगिक संबंधों को अपराध की श्रेणी से बाहर किया गया। भारतीय दंड संहिता की धारा 377 भारतीय संस्कृति की देन नहीं, बल्कि औपनिवेशिक नैतिकता का आरोपण थी। इस धारा ने न केवल समलैंगिक संबंधों को अपराध घोषित किया, बल्कि LGBTQ+ समुदाय की सामाजिक

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 04, Issue 12, December 2025

गरिमा और मानवीय अधिकारों को भी दीर्घकाल तक बाधित किया। अतः समकालीन LGBTQ+ विमर्श में धारा 377 को औपनिवेशिक दमन के प्रतीक के रूप में देखा जाना आवश्यक है।

भारतीय संविधान और लैंगिक समानता– भारतीय संविधान लैंगिक समानता को लोकतांत्रिक और न्यायपूर्ण समाज की आधारशिला मानता है। यद्यपि संविधान में LGBTQ+ समुदाय या लैंगिक पहचान का प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं किया गया है, फिर भी इसके मूल प्रावधान समानता, स्वतंत्रता और गरिमा के सिद्धांतों के माध्यम से लैंगिक अल्पसंख्यकों के अधिकारों के लिए सुदृढ़ संवैधानिक आधार प्रदान करते हैं। अनुच्छेद 14 विधि के समक्ष समानता और समान संरक्षण की गारंटी देता है, अनुच्छेद 15 लिंग के आधार पर भेदभाव को निषिद्ध करता है, और अनुच्छेद 19 व्यक्ति को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रदान करता है। इसके साथ ही अनुच्छेद 21 जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार को केवल शारीरिक अस्तित्व तक सीमित न मानकर गरिमा, निजता और आत्मनिर्णय से जोड़ता है। समकालीन न्यायिक व्याख्याओं ने "लिंग" की संकल्पना को जैविक पुरुष–स्त्री द्वैत से आगे बढ़ाकर लैंगिक पहचान और यौन अभिविन्यास तक विस्तारित किया है। इस प्रकार भारतीय संविधान लैंगिक समानता को एक जीवंत और विकसित होने वाली अवधारणा के रूप में स्थापित करता है, जो LGBTQ+ समुदाय के अधिकारों की संवैधानिक मान्यता का आधार बनती है।

सामाजिक स्वीकार्यता– यथार्थ और चुनौतियाँ– संवैधानिक एवं कानूनी परिवर्तनों के बावजूद LGBTQ+ समुदाय की सामाजिक स्वीकार्यता भारतीय समाज में अब भी एक जटिल और बहुस्तरीय समस्या बनी हुई है। कानून द्वारा प्रदत्त अधिकार और सामाजिक व्यवहार के बीच स्पष्ट अंतर दिखाई देता है। यह अध्याय भारतीय सामाजिक संरचना के भीतर LGBTQ+ समुदाय की स्थिति, अनुभव और चुनौतियों का विश्लेषण करता है।

साहित्य, सिनेमा और मीडिया में LGBTQ+ विमर्श– समकालीन भारतीय समाज में साहित्य, सिनेमा और मीडिया ने LGBTQ+ विमर्श को दृश्यता प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। साहित्य के क्षेत्र में प्रारंभिक दौर में LGBTQ+ अनुभवों को संकेतात्मक, रूपकात्मक अथवा हाशिये पर रखकर प्रस्तुत किया गया, किंतु समकालीन हिंदी और अंग्रेज़ी साहित्य में आत्मकथात्मक लेखन, कथात्मक यथार्थ और वैयक्तिक अनुभवों के माध्यम से लैंगिक पहचान, प्रेम, अकेलापन, अस्वीकार्यता और संघर्ष जैसे विषय स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आए हैं। यह साहित्य न केवल सामाजिक चुप्पी को तोड़ता है, बल्कि LGBTQ+ व्यक्तियों को एक मानवीय और गरिमापूर्ण पहचान भी प्रदान करता है। भारतीय सिनेमा में LGBTQ+ पात्रों का चित्रण लंबे समय तक हास्य, विकृति या सनसनी के रूप में किया जाता रहा, जिससे सामाजिक पूर्वाग्रह और मज़बूत हुए। किंतु हाल के वर्षों में समकालीन और स्वतंत्र सिनेमा तथा ओटीटी प्लेटफॉर्म्स पर बनी फ़िल्मों और वेब–सीरीज़ में LGBTQ+ पात्रों को संवेदनशील, यथार्थवादी और सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है। इस परिवर्तन ने दर्शकों के बीच संवाद को बढ़ाया है और लैंगिक विविधता के प्रति समझ विकसित करने में योगदान दिया है, यद्यपि मुख्यधारा सिनेमा में रूढ़ छवियाँ अब भी पूरी तरह समाप्त नहीं हुई हैं।

मीडिया, विशेष रूप से डिजिटल और सोशल मीडिया, ने LGBTQ+ विमर्श को सार्वजनिक बहस का विषय बनाने में निर्णायक भूमिका निभाई है। समाचार, परिचर्चाएँ, विशेष रिपोर्ट और ऑनलाइन अभियानों के माध्यम से इस समुदाय के अधिकारों, समस्याओं और अनुभवों को व्यापक मंच मिला है। साथ ही, सोशल मीडिया ने LGBTQ+ व्यक्तियों को आत्म–अभिव्यक्ति और सामूहिकता का अवसर प्रदान किया है। हालांकि, कई बार मीडिया प्रस्तुति में सनसनीखेज़ीकरण, अतिरंजन और रूढ़ धारणाओं का पुनरुत्पादन भी देखने को मिलता

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 04, Issue 12, December 2025

है। इस प्रकार साहित्य, सिनेमा और मीडिया में LGBTQ+ विमर्श भारतीय समाज के संक्रमणकालीन स्वरूप को प्रतिबिंबित करता है, जहाँ दृश्यता और संवेदनशीलता बढ़ी है, परंतु पूर्ण सामाजिक स्वीकार्यता की दिशा में अभी भी निरंतर प्रयास आवश्यक हैं।

चयनित केस–स्टडी– समकालीन भारत में LGBTQ+ समुदाय की सामाजिक स्थिति को समझने के लिए चयनित केस–स्टडी अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि वे सांख्यिकीय आँकड़ों के स्थान पर जीवंत अनुभवों और सामाजिक यथार्थ को सामने लाती हैं। एक शहरी मध्यमवर्गीय परिवार से संबंधित केस–स्टडी में यह स्पष्ट होता है कि जब किसी सदस्य ने अपनी समलैंगिक पहचान को सार्वजनिक किया, तो प्रारंभिक प्रतिक्रिया अस्वीकार, भय और सामाजिक प्रतिष्ठा को लेकर चिंता से भरी हुई थी। परिवार द्वारा विवाह और वंश परंपरा से जुड़े दबाव बनाए गए, किंतु समय के साथ शिक्षा, संवाद और परामर्श की प्रक्रिया ने दृष्टिकोण में आंशिक परिवर्तन लाया। यह उदाहरण दर्शाता है कि परिवार, जो अस्वीकार का प्रमुख स्रोत हो सकता है, वही संवाद के माध्यम से स्वीकार्यता का आधार भी बन सकता है।

एक अन्य केस–स्टडी ट्रांसजेंडर समुदाय की आजीविका और सामाजिक सहभागिता से संबंधित है, जिसमें यह सामने आता है कि संवैधानिक मान्यता और शैक्षणिक योग्यता के बावजूद ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को औपचारिक रोजगार के क्षेत्र में गंभीर भेदभाव का सामना करना पड़ता है। पहचान–पत्रों, कार्यस्थल के वातावरण और सामाजिक पूर्वाग्रहों के कारण उन्हें हाशिये के कार्यों तक सीमित कर दिया जाता है। यह स्थिति यह स्पष्ट करती है कि कानूनी अधिकार तब तक प्रभावी नहीं हो सकते, जब तक सामाजिक और संस्थागत संरचनाएँ समान अवसर प्रदान करने के लिए संवेदनशील न हों।

एक तीसरी केस–स्टडी मीडिया प्रतिनिधित्व के प्रभाव से संबंधित है, जिसमें यह पाया गया कि संवेदनशील और यथार्थवादी फ़िल्मों या वेब–सीरीज़ के संपर्क में आने के बाद युवाओं में LGBTQ+ समुदाय के प्रति सहानुभूति और समझ में वृद्धि हुई, जबकि रूढ़ और हास्यात्मक प्रस्तुतियों ने नकारात्मक धारणाओं को और मज़बूत किया। यह अध्ययन यह सिद्ध करता है कि मीडिया केवल प्रतिबिंबक माध्यम नहीं है, बल्कि सामाजिक दृष्टिकोण को गढ़ने वाला एक सक्रिय कारक भी है। इन चयनित केस–स्टडी के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि LGBTQ+ सामाजिक स्वीकार्यता एक क्रमिक, जटिल और बहुस्तरीय प्रक्रिया है, जिसमें परिवार, रोजगार और मीडिया तीनों की भूमिका निर्णायक है।

वर्तमान भारत में LGBTQ+ विमर्श एक स्पष्ट संक्रमणकाल से गुजर रहा है, जहाँ एक ओर संवैधानिक और कानूनी स्तर पर महत्त्वपूर्ण प्रगति दिखाई देती है, वहीं दूसरी ओर सामाजिक व्यवहार और मानसिकता में गहरे अंतर्विरोध विद्यमान हैं। धारा 377 के आंशिक उन्मूलन, ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को तृतीय लिंग की मान्यता तथा निजता और गरिमा को मौलिक अधिकार के रूप में स्वीकार किए जाने से LGBTQ+ समुदाय को वैधानिक संरक्षण प्राप्त हुआ है, किंतु यह संरक्षण अभी व्यापक सामाजिक स्वीकार्यता में पूरी तरह रूपांतरित नहीं हो पाया है। परिवार, विवाह, धर्म और परंपरा से जुड़ी रूढ़ धारणाएँ आज भी लैंगिक विविधताओं के प्रति संकोच और अस्वीकृति को जन्म देती हैं। शहरी और शिक्षित वर्गों में संवाद, दृश्यता और सहानुभूति का स्तर बढ़ा है, जबकि ग्रामीण और परंपरागत समाजों में विरोध और चुप्पी अधिक देखी जाती है। इस प्रकार वर्तमान LGBTQ+ विमर्श कानून और समाज के बीच बने अंतराल, दृश्यता और वास्तविक समावेशन के द्वंद्व, तथा अधिकार और व्यवहार की असमान गति को प्रतिबिंबित करता है, जो इसे स्पष्ट रूप से संक्रमणकालीन अवस्था में स्थापित करता है।

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 04, Issue 12, December 2025

शिक्षा, संवेदनशील पाठ्यक्रम और संवाद की आवश्यकता– LGBTQ+ समुदाय की वास्तविक सामाजिक स्वीकार्यता के लिए शिक्षा, संवेदनशील पाठ्यक्रम और निरंतर संवाद की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। केवल कानूनी अधिकार प्रदान कर देने से सामाजिक मानसिकता में परिवर्तन संभव नहीं होता, जब तक कि शिक्षा व्यवस्था के माध्यम से लैंगिक विविधता के प्रति समझ और सहानुभूति विकसित न की जाए। विद्यालयों और उच्च शिक्षा संस्थानों के पाठ्यक्रमों में लैंगिक पहचान, यौन अभिविन्यास, मानवाधिकार और सामाजिक समावेशन जैसे विषयों को संवेदनशील और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सम्मिलित किया जाना आवश्यक है, ताकि छात्र प्रारंभिक अवस्था से ही विविधताओं को स्वाभाविक रूप में स्वीकार करना सीख सकें। इसके साथ ही शिक्षकों का प्रशिक्षण, परामर्श सेवाएँ और खुले संवाद के मंच भय, मिथकों और पूर्वाग्रहों को कम करने में सहायक हो सकते हैं। परिवार, शिक्षा संस्थान, मीडिया और नागरिक समाज के बीच निरंतर संवाद स्ळठज्फ+ विमर्श को केवल अकादमिक बहस तक सीमित न रखकर सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में रूपांतरित कर सकता है। इस प्रकार शिक्षा और संवाद समावेशी, न्यायपूर्ण और संवेदनशील समाज की स्थापना के लिए आधारभूत साधन हैं। भविष्य में समावेशी समाज की स्थापना के लिए नीतिगत सुधारों के साथ–साथ सामाजिक चेतना का विकास अनिवार्य है।

निष्कर्ष– LGBTQ+ विमर्श केवल यौनिकता का प्रश्न नहीं, बल्कि मानवाधिकार, गरिमा और सामाजिक न्याय का प्रश्न है। भारतीय समाज में स्वीकार्यता की प्रक्रिया धीमी किंतु सतत है। वास्तविक स्वीकार्यता तभी संभव है जब कानून, समाज और संस्कृतिकृतीनों स्तरों पर समन्वित परिवर्तन हो।

संदर्भ सूची–

1. भारतीय संविधान
2. सुप्रीम कोर्ट के निर्णय (2014, 2018)
3. समकालीन सामाजिक अध्ययन एवं साहित्यिक कृतियाँ